मालव-संस्कृति में धार्मिकता के स्वर

☐ श्रीचंद जैन, एम.ए., एल-एल.बी. (उज्जैन)

मालव की प्राचीनता

मालव एक परम पुनीत जनपद है। जिसकी अर्चना-वन्दना में कई युगों से कवि समुद्यत रहे हैं। इस पावन प्रदेश का प्रत्येक भाग धार्मिक दृष्टि से प्रशस्त है, न कभी यह अकाल से पीड़ित रहा, और न कभी इससे किसी का अहित हुआ।

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में इस मालव की प्रशस्तियाँ विविध रूपों में गाई गई हैं। समस्त धर्म यहाँ फले-फूले एवं अनेक सांस्कृतिक चेतनाएँ प्रबुद्ध बनकर इस प्रदेश की सहजशील धार्मिकता को व्यापकता प्रदान करती रही है।[१]

मालव (मालवा) का पुरातन इतिहास बड़ा गौरवमय रहा है एवं इसका प्राकृतिक वैभव आज भी मनोरम तथा नैसर्गिक एवं आनन्ददायक है।

विविध शासनों से प्रभावित होने के कारण इस प्रदेश की सीमाएँ समय-समय पर परिवर्तित होती रही हैं। और इन परिवर्तनों से इस उदात्त भूखण्ड की गौरवान्विति लोक संस्कृति अधिक अलंकृत हुई है। जिस प्रकार दिनकर का व्यापक आलोक विश्व को परिव्याप्त कर उसके कण-कण को प्रकाशित करता है। इसी प्रकार इस वंदनीय मालव की गरिमा से संसार की ऋद्धि-सिद्धियां विशेषतः चमत्कृत हुई हैं। इस रम्य प्रदेश की रमणीयता से प्रभावित होकर संत प्रवर कबीरदास ने प्रमुदित होकर एक दिन गाया था—

देश मालवा गहन गम्भीर।
डग-डग रोटी पग-पग नीर॥

धन-धान्य से परिपूर्ण इस भूमि का वैभव रत्नगर्भा धरित्री के लिए अत्यधिक गरिमामय है। अमीर-गरीब दोनों का यहाँ सम्मान-सत्कार उपलब्ध है। दूसरे शब्दों

---

१ गृह-गृह में होता है, अर्चन !
गृह-गृह में देवों का वंदन !
गृह-गृह में अर्घ्य धूप नव पूजन !
गृह-गृह में संगीत निगुंजन !
प्रिय उल्लास हास कुल कुंजन !
मेरे 'मालव' को अभिनन्दन !!

(मालव गौरव—श्री मदनलाल वर्मा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में कहा जा सकता है, इस पुण्यभूमि की गोद में संत, अमीर और दीन-हीन सभी समान भाव से बैठते हैं एवं अपनी आत्मिक सुख-शांति को प्राप्त कर स्वयं को भाग्यशाली मानते हैं।

इस भूभाग की भौगोलिक सीमाएं

डा० चिंतामणि उपाध्याय के कथनानुसार "मालव" शब्द उन्नत भूमि का सूचक है। विंध्य पर्वत के उत्तरी आँचल में फैला हुआ विस्तृत पठार सम्पूर्ण मध्य भारत में उन्नत खण्ड बनकर अपनी भौगोलिक सीमा निर्धारित करता है। "मलय" शब्द की तरह मालव भी उच्च भूमि अथवा पहाड़ी क्षेत्र के भाग को प्रगट करता है। यही पठार मालव की स्वाभाविक सीमा का बोध कराता है। फिर भी समय-समय पर राजनैतिक हलचलों के कारण मालव सीमाएँ बदलती रही हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने आधुनिक मालव के विस्तार एवं सीमाओं के सम्बन्ध में विचार प्रगट करते हुए लिखा कि मध्य भारतीय एजेन्सी से सम्पूर्ण भू-भाग के साथ ही मालवा का क्षेत्र विस्तार दक्षिण में नर्मदा तक, उत्तर में चम्बल तक, पश्चिम में गुजरात एवं पूर्व में बुन्देलखण्ड तक माना जाएगा। स्मिथ महोदय द्वारा मालव प्रदेश की सीमाओं का जो उल्लेख किया गया है, वह अंग्रेजों द्वारा राजनैतिक एवं प्रशासकीय दृष्टि से निर्मित मध्य-भारत क्षेत्र की व्यापकता को लिए हुए है। किन्तु मालव की भौगोलिक स्थिति का यहाँ केवल स्थूल रूप से ही परिचय होता है।[१]

डा० श्याम परमार इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि स्थूल रूप से अनेक विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि मालवगण के आगमन के पश्चात् इस जनपद का नाम मालव अथवा मालवा पड़ा।.....सन्देह नहीं, इस जनपद के प्राचीन होने के अन्य प्रमाण भी उपलब्ध हैं। सिकन्दर के आक्रमण के समय मालवों का उसके साथ युद्ध हुआ था। मद्र और पौरव जाति के साथ मालवों का उल्लेख बृहद् संहिता में इस प्रकार आया है।[२]

श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "मल्ल" से मालव शब्द आया है। बुद्ध के समय और उसके भी बहुत पहले मालव अवंति जनपद कहलाता रहा। अनेक ग्रन्थों में मालव शब्द का उल्लेख आया है। महाभारत में प्रसिद्ध कीचक और उसकी भगिनी सुदेष्णा मालवकुमारी से उत्पन्न बताये गये हैं। अश्वपति कैकय की कन्या सावित्री मालवी थी जिसे यम द्वारा मालव नाम के सौ पुत्र होने का वरदान प्राप्त था।

मालव जाति की प्राचीन मुद्राएँ राजपूताने के कुछ भागों में मिली हैं जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी की सिद्ध हुई हैं। उनमें से अधिकांश मुद्राओं पर "मालव नाम जय" अथवा 'जय मालव नाम जय' लिखा है। कुछ मुद्राओं पर मालव जाति के राजाओं के नाम भी हैं। पाणिनी ने ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व मालवों का उल्लेख किया है।

---

१ मलावी लोक गीत एक विवेचनात्मक अध्ययन (पृष्ठ संख्या ३०)

२ अम्बर मद्र कमाल व पौरूवकच्छार दंडपिंगलका।
माणहल हूण को हल शीतक माण्डव्य भूत पुराः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डा० आर० डी० बनर्जी ने मालवों को पंजाब के निवासी बताया है। जो बाद में आकर अवंति जनपद में बस गये। प्रगट है कि मालव जाति अत्यन्त प्राचीन है और उसकी प्राचीनता के साथ ही मालव अथवा मालवा शब्द की प्राचीनता असंदिग्ध है।

संस्कृति का स्वरूप एवं जैन संस्कृति

संस्कृति मानवता का प्रतीक है। इन्सानियत का आदि धर्म है। संस्कारिता की जननी है। राष्ट्रीयता का अविनश्वर स्वर है। उत्थान का आन्तरिक रूप है। अध्यात्मवाद का अमर प्रतीक है एवं विश्व-मैत्री तथा सार्वभौमिकता का अभिन्न अंग है।

संस्कृति प्रत्येक राष्ट्र की आध्यात्मिक वाणी है जिसके माध्यम से धार्मिकता के स्वर निरन्तर मुखरित होते रहते हैं। जिस देश की सांस्कृतिक चेतना धूमिल हो जाती है उसे नष्ट होने में कुछ भी विलम्ब नहीं लगता। अतएव संस्कृति सर्वोपरि है तथा इसका संरक्षण नितान्त आवश्यक है।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संस्कृति तथा सभ्यता एक-दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। इनमें पर्याप्त भेद है। संस्कृति आत्मा है और सभ्यता शरीर। चिन्तन, विचारधारा, आध्यात्मिकता, उन्मेष आदि संस्कृति के परिचायक हैं। जबकि वेश-भूषा, भोजन व्यवस्था, रहन-सहन आदि सभ्यता के अन्तर्गत हैं। परिणामस्वरूप देश-काल आदि से प्रभावित सभ्यता शीघ्र परिवर्तित हो जाती है। लेकिन संस्कृति अपरिवर्तनशील कही गई है। इस कथन से हम यों भी कह सकते हैं कि—"सभ्यता की तुलना में संस्कृति अधिक स्थिर है तथा सहसा इसमें परिवर्तन संभाव्य नहीं है। फिर भी एक लम्बे आयाम के उपरान्त संस्कृति भी परिवर्तित हो जाती है।"

संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु कृ अ) धातु से बनता है। जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है। आज की भाषा में यह अँग्रेजी शब्द "कलचर" का पर्यायवाची शब्द माना जाता है। संस्कृति शब्द का प्रयोग कम से कम दो अर्थों में होता है। एक व्यापक और दूसरे संकीर्ण अर्थ में। व्यापक अर्थ में उक्त शब्द का प्रयोग किया जाता है। व्यापक अर्थ के अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस अर्थ में संस्कृति को सामाजिक प्रथा (कस्टम) का पर्याय भी कहा जाता है। संकीर्ण अर्थ में संस्कृति एक वांछनीय वस्तु मानी जाती है और संस्कृत व्यक्ति एक श्लाघ्य व्यक्ति समझा जाता है। इस अर्थ में संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है जो व्यक्ति को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाती है। नर-विज्ञान के अनुसार संस्कृति और सभ्यता शब्द पर्यायवाची है।

हमारी समझ में संस्कृति और सभ्यता में अन्तर किया जाना चाहिए। सभ्यता का तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक-राजनैतिक साधनों से समझना चाहिए जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन-यात्रा सरल एवं उसकी स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिन्तन-कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझनी चाहिए जो मानव के व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली है।.....मोक्ष-धर्म अथवा पूर्णत्व की खोज भी संस्कृति का अंग मानी जाएगी। हिन्दू तथा भारतीय संस्कृति का सबसे उदात्त रूप संस्कृत महाकाव्यों तथा बौद्धधर्म की शिक्षाओं में प्रतिफलित हुआ है।[१]

जैन संस्कृति की गरिमा एवं उपलब्धियाँ

संस्कृति एवं धर्म इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि हम धर्म का व्यापक अर्थ लें तो संस्कृति किसी न किसी रूप में इसमें समाहित हो जाती है। दूसरे रूप में संस्कृति संस्कारों से संबंधित है। ये संस्कार धर्म निबद्ध होने से संस्कृति के अभिन्न अंग भी माने जाते हैं। इस प्रकार ये दोनों (संस्कृति और धर्म) एक-दूसरे में इस भाँति गुँथे हुए हैं कि इन्हें पृथक् करना सहज नहीं है। यह भी एक विचारधारा प्रवाहित है कि प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति धर्ममूलक होती है तथा धार्मिकता ही सांस्कृतिक चेतना को स्थायित्व प्रदान करती है।

स्वामी श्री करपात्री जी 'संस्कृति-विमर्श' शीर्षक निबन्ध में धर्म और संस्कृति में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि धर्म और संस्कृति में इतना भेद है। धर्म केवल शास्त्रोक्त समाधिगम्य है और संस्कृति में शास्त्र से अविरुद्ध लौकिक धर्म भी परिणत हो सकता है। युद्ध-भोजनादि में लौकिकता अलौकिकता दोनों ही हैं। जितना अंश लोकप्रसिद्ध है, उतना लौकिक है जितना शास्त्रोक्त समाधिगम्य है उतना अलौकिक। अलौकिक अंश धर्म है। संस्कृति में दोनों का अन्तर्भाव है।[२]

जैन संस्कृति पूर्णरूपेण आध्यात्मिक है। सांसारिक अभिवृद्धि नगण्य है। मानव-जीवन की सफलता का चरमबिन्दु मोक्ष है; अतः इसकी उपलब्धि के लिए बाह्याडम्बर निरन्तर त्याज्य बताये गये हैं।

जैन संस्कृति सरोज की पाँच पांखुड़ियाँ हैं—

(१) अहिंसा (२) मानव का अनन्य महत्त्व (३) बाहर नहीं अन्दर की ओर (४) कर्मवाद (५) अपरिग्रहवाद।[3]

इन पाँचों पाँखुड़ियों का स्वरूप एक शब्द विश्व कल्याण में सन्निहित है अथवा अहिंसा में ये पाँच अनुस्यूत हैं।

यहाँ पर विशेषतः उल्लेख्य है कि जैन संस्कृति जन्म से जाति-व्यवस्था की विरोधी है तथा कर्म को ही प्राधान्य दिया गया है, जैसा कि—

मनुष्य ब्राह्मण के योग्य कर्म करने से ही ब्राह्मण होता है, क्षत्रिय के कर्म से

---

१ हिन्दी साहित्य कोष, भा० १, पृष्ठ ८६८

२ कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, पृष्ठ ३६

३ मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रन्थ, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षत्रिय कहलाता है, वैश्य के कर्म द्वारा ही वैश्य होता है, शूद्र भी कर्म से ही होता है।[1]

सार्वभौमिक कल्याण की विराट् भावना जैन संस्कृति की आधारभूमि है। अतएव इसका व्यापक महत्त्व सर्वत्र स्वीकृत है। सन्त कबीर ने जातिवाद को कपोल कल्पित माना है और पूछा है—तुम कैसे ब्राह्मण हो गये और हम शूद्र कैसे कहलाये; हम कैसे खून रह गये, और तुम कैसे दूध हो गये ?[2]

जैन संस्कृति की यही गरिमा और यही इसकी विशिष्ट उपलब्धि है कि इसमें प्रत्येक जीव के कल्याण की साँसें जीवित हैं, उद्वेलित हैं। यह पुनीत एवं प्राचीनतम श्रमण संस्कृति है जो विराट् विश्व के कल्याण को सर्वोपरि मानती है तथा आत्मोद्धार में ही उल्लसित होती रहती है। कर्म को प्रधानता देकर जन-जन को इसने सजग बनाया है। संघर्षों से जूझने की अपार शक्ति भी दी है। सर्वोत्तम जन्म मानव है। अतएव विषय वासना से दूर रहकर आत्म-कल्याण की ओर सदा श्रद्धा और तन्मयतापूर्वक प्रयत्नशील रहना चाहिए। यही अध्यात्मवाद है। यही अन्तरात्मा का वास्तविक स्वरूप है और यही नरभव का साफल्य है। जैन कवियों ने एवं आचार्यों ने अपने काव्य की इसी दृष्टिकोण से सफलता आँकी है।

मालवा में धार्मिकता के स्वर

पीयूष की भाँति जन-जन की कल्याणकारिणी मालव संस्कृति बड़ी निर्मल, धार्मिक, उदात्त, उर्वर, कला परिपूर्ण एवं सिद्ध सन्त प्रश्रयदायिनी तथा साधनास्थली रही है। वस्तुतः भाव सौन्दर्य, कलात्मकता, प्राकृतिक सुन्दरता, नैसर्गिक मनोरमता, थिरकती सौम्यता तथा पारस्परिक समन्वयता उसी धरा की गोद में अधिक प्रतिष्ठित होती है, जहाँ जीवन की सुविधाएँ उन्मुक्त अवस्था में प्राप्त हों। मालव-भूमि इस सन्दर्भ में प्रणम्य और पूजित हैं तथा विविध साहित्य प्रशंसित भी है।

सर्वधर्मसम्मेलन

यहाँ जैन, बौद्ध, वैष्णव, शाक्य, शैव आदि अनेक धर्म फले-फूले हैं। चंडप्रद्योत युगीन उज्जयिनी, मौर्य युगीन उज्जयिनी, शुंग शक विक्रमादित्य-शातवाहन युगीन उज्जयिनी, गुप्त तथा हर्षवर्धन युगीन उज्जयिनी, प्रतिहार और परमार युगीन उज्जयिनी आदि शीर्षक अध्यायों में डाक्टर शोभा कानूनगो ने अपने प्रकाशित शोध प्रबन्ध 'उज्जयिनी का सांस्कृतिक इतिहास' में सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि मालवा में अनेक धर्म-सम्प्रदाय विभिन्न शासकों के शासनकाल में पुष्पित और फलित हुए हैं। उक्त धर्मों का

---

१ कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥ (उत्त० २५/३३)

२ तुम कत ब्राह्मन, हम कत सूद।
हम कत लोहू, तुम कत दूध॥ (कबीर ग्रन्थावली)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचार-प्रसार केवल जनता में ही नहीं था, अपितु शासकों एवं शासन के प्रमुख अधिकारियों ने भी (इनमें दीक्षित होकर) इन सम्प्रदायों को गौरवान्वित किया था।[१]

यह सहज गम्य है कि मालवा में जैनों का प्रमुख स्थान रहा है। समय-समय पर यहाँ पर्याप्त मात्रा में जैन-धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ एवं हजारों साधु-सन्तों ने यहाँ की धरती को पावन किया है। भगवान महावीर यहाँ पधारे थे तथा जैन पुराणानुसार जैन-धर्म विषयक अनेक घटनाएँ भी इस पुण्य भूमि पर घटित हुई हैं। यहाँ का सती दरवाजा एक जैन नारी के सतीत्व की सफल परीक्षा से सम्बन्धित है। मैनासुन्दरी ने विधिवत् नवपद (नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं, नमो नाणस्स, नमो दंसणस्स, नमो चरितस्स, नमो तवस्स) की आराधना करके अपने पति श्रीपाल का कोढ़ दूर किया था। इस प्रकार की अनेक जैन धार्मिक आस्थाएँ मालव से जुड़ी हुई हैं। उज्जैन, मक्सी-पार्श्वनाथ, धारानगरी, मांडव-दशपुर इत्यादि अनेकों जैन तीर्थ हैं जो श्रमण संस्कृति के सजीव प्रतीक रहे हैं। जहाँ भव्यात्माएँ धर्माराधना करके जीवन को सफल बनाते हैं।

धार्मिकता के चिरनिनादित स्वरों के ये गौरवमय माध्यम

धर्म शब्द "धृ" धातु से बना है जिसका अर्थ है—धारण या पालन करना। किन्तु प्राचीन वैदिक साहित्य के अनुशीलन से प्रगट होता है कि इसका प्रयोग अनेक अर्थों में होता आया है। किन्तु अधिक स्थानों में धार्मिक विधियों और धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

धर्म का लक्षण है अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति वह प्राप्ति जिसके द्वारा हो सकती है, वही धर्म है। महाभारत में 'अहिंसा परमो धर्मः' (अनुशासन पर्व) अनृशस्य परमोधर्मः (वनपर्व ३७३, ७६) अहिंसा परम धर्म है। दया परम धर्म कहा गया है। जैनधर्म में भी धर्म के निम्न लक्षण बताये गये हैं—धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम

---

१ इस सन्दर्भ में निम्न ग्रन्थ विशेषतः पठनीय हैं :—

१ मालव : एक सर्वेक्षण	(सं० डा० वि० श्री वाकणकर)
२ उज्जयिनी का सांस्कृतिक इतिहास	(डा० शोभा कानूनगो)
३ उज्जयिनी में वैष्णव धर्म	(डा० एलरिक बारलो शिवाजी)
४ प्राचीन एवं मध्यकालीन मालवा में जैनधर्म	(डा० तेज सिंह गौड)
५ उज्जयिनी दर्शन	(डा० सूर्य नारायण व्यास)
६ विक्रम स्मृति ग्रंथ	(डा० रमाशंकर त्रिपाठी)
७ संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी	(पं० व्रज किशोर)
८ राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रन्थ	(अगरचंद नाहटा)
९ मालव में युगान्तर	(डा० रघुवीरसिंह)
१० जैन साहित्य का इतिहास	(नाथूराम प्रेमी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तप ये धर्म के लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।[1]

आचार्य कुन्दकुन्द ने भी 'चारित्तं खलु धम्मो' (प्रवचनसार) और 'धम्मो दया विसुद्धो' (बोध पाहुड २५) चारित्र ही निश्चय में धर्म है। इस प्रकार धर्म का विविध स्वरूप कहा है। आचार्य समन्तभद्र ने अपने रत्नकरंड श्रावकाचार में धर्म का जो स्वरूप बतलाया है वह इस प्रकार है—

जो कर्म बन्धन का नाशक है, और प्राणियों को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुखों में स्थापित करता है।[2]

उक्त कथन से नीचे लिखे तथ्य उद्घटित होते हैं—

(१) संसार में दुःख है, जिसे सुख कहा जाता है या माना जाता है, वह सुख वास्तविक सुख नहीं है यद्यपि उसे सुख की संज्ञा दी जाती है तब भी वह उत्तम सुख नहीं है।

(२) संसार के दुखों से छुटकारा और उत्तम सुख की प्राप्ति कर्म बन्धन का नाश किये बिना सम्भव नहीं है।

(३) अतएव सच्चा धर्म वही है जो कर्म बन्धन का नाशक है। जिससे कर्म बन्धन होता है, वह सच्चा धर्म नहीं है।

(४) अतः धर्म से सच्चा धर्म जुदा ही है। धर्म नाम से ही प्रत्येक धर्म सच्चा धर्म नहीं माना जा सकता। धर्म शब्द की व्युत्पत्ति और यह व्याख्या सर्वाचार्य सम्मत जैन व्याख्या है। शेष सब व्याख्याएँ प्रकारान्तर से उसी का पोषण करती हैं।[3]

इन पृष्ठों में इन्हीं साधनों एवं माध्यमों की संक्षिप्त चर्चा की जा रही है जो धार्मिकता के स्वरों को मुखरित करते हैं, वे निम्न हैं—

(१) व्रतोत्सव एवं अनुष्ठान।
(२) देव-गुरु-धर्मोपासना एवं वंदना-अर्चना आदि।
(३) सामायिक तथा प्रतिक्रमण।
(४) पर्व आदि दिनों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजन।
(५) धार्मिक कथा पठन एवं श्रवण।
(६) अणुव्रत एवं महाव्रत समारोह (दीक्षा)।
(७) शास्त्र स्वाध्याय, चिंतन एवं मनन।
(८) विविध प्रत्याख्यान।

---

१ धम्मो मगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥ (दशवै० १।१)

२ देशयामि समीचीनं, धर्मकर्मनिवर्हणम्।
संसार दुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे॥ —रत्नकरंड श्रावकाचार

३ पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री सिद्धान्ताचार्य : धर्म शब्द का स्वरूप और व्याख्या
—जैन सिद्धान्त भास्कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) यथाशक्ति तप एवं जप साधना।

(१०) व्यसन परिहार प्रतिज्ञा।

(११) नियमित रूप से प्रार्थना, व्याख्यान, श्रवण एवं ज्ञान चर्चा।

ऊपर बताये गये साधनों के अतिरिक्त और भी ज्ञान वृद्धि के प्रचुर साधन मौजूद हैं। जिनकी आराधना करने पर निःसन्देह ज्ञान की अभिवृद्धि होती है एवं संसार की विभीषिका से संतप्त आत्माओं का उद्धार भी निहित है। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन एवं अनुशीलन-परिशीलन आत्म-मुमुक्षुओं के लिए सुखद-सुगम सोपान है। जो मालवा के धार्मिक स्थानकों में, उपाश्रयों में, संस्थाओं में, एवं साधु-साध्वियों में सुगमता से उपलब्ध हो सकता है या सीखा जा सकता है। अनेक जैन सन्तों के नामों पर स्थापित ज्ञान-मन्दिर, शास्त्र-भण्डार एवं स्वाध्याय भवन आदि ज्ञान चेतना के स्थाई रूप हैं। लोक जीवन की धूमिल धारणा को कई रूपों में धार्मिकता के भव्य रंगों से अलंकृत करती है। भव्य जनों के मधुर कण्ठों से मुखरित भजन-स्तवन आत्मोत्थान की पर्याप्त प्रेरणा देते हैं। गीत-गान की यह परिपाटी शीतल-समीर धारा के समान सन्तप्त मानव को सदा शान्त करती है।

धार्मिक अवसरों पर जो जागरण करने की व्यवस्था है वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह भ्रमित जन को एकाग्र चित्त, व्यग्र मानव को शान्त और अव्यवस्थित चेतन को व्यवस्थित करती है। मालव के कई जैन उपासना गृहों में जैन भक्तजन भक्तामर, कल्याण मन्दिर, चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र, महावीराष्टक आदि स्तोत्रों का बड़ी तन्मयतापूर्वक अखण्ड पाठ किया करते हैं। यह परिवारी विमोहित आत्मा को सन्मार्ग का पथिक बनाने में परम सहायक मानी गई है।

जैन कथा, लोक-गाथा एवं लोक नाट्यों आदि के अतिरिक्त जैन सूत्रों में धार्मिक शिक्षणपरक कई दृष्टान्त चित्रों की स्वस्थ परम्परा रही है। इनमें नारकीय जीवन की यातनापरक चित्रों की बहुलता मिलती है ताकि उनको देखकर प्रत्येक मानव अपने जीवन को अच्छा बनाने का प्रयत्न करे। नारकीय जीवन सम्बन्धी चित्रों में मुख्यतया पाप, अन्याय, अत्याचार, छल, प्रपंच, ईर्ष्या, द्वेष, क्लेश तथा अनैतिक कार्यों के चित्र चित्रित किये हुए मिलते हैं। मनोरंजन के माध्यम से भी धार्मिक शिक्षण प्रदान करने के कई तरीके हमारे यहाँ प्रचलित रहे हैं।

इस प्रकार विविध रूपों में अभिव्यक्त इन धार्मिकता के स्वरों से मालव की सांस्कृतिक चेतना चिरकाल से जीवंत बनी है। प्राचीन मालवा का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि यह धरा श्रमण-धर्म परम्परा को धारण करके ही सार्थक बनी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org